□ डा० परमेश्वर झा.
यूनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग,
बी. एस. एस. कालेज, सुपौल, सहरसा (बिहार)

भारतीय गणित के अंध युग में जैनाचार्यों की उपलब्धियाँ

भारतीय संस्कृति अति प्राचीन है, इसकी समृद्ध परम्परा है। यहाँ के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ हैं वेद (३००० ई० पू०)। तत्पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण, वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत जैसे अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। इन ग्रन्थों में आध्यात्मिक सिद्धान्तों के साथ-साथ वैज्ञानिक तथ्य भी बीज रूप में पाए जाते हैं। ज्योतिर्विज्ञान एवं गणित की नींव भी धार्मिक कार्यों के सम्पादन के लिए ही पड़ी। ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, यजुर्वेद, मैत्रायणी एवं तैत्तिरीय संहिताओं में ग्रहण, व्यतीपात, मुहूर्त्त, नक्षत्र-गणना, अंक-संज्ञाओं की सूची, विभिन्न प्रकार के भिन्न, द्विघातीय समीकरण के साधन आदि विषयों का भी समावेश है।[1] पुनः ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी स्वतन्त्र ग्रन्थ वेदांग ज्योतिष (१२०० ई० पू०) की रचना हुई। तत्पश्चात् ८००-५०० ई० पू० के काल में बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, मैत्रायण आदि शुल्व-सूत्रों का निर्माण हुआ जहाँ वेदियों की संरचना के क्रम में अनेक ज्यामितीय रचनाओं, द्विघातीय एवं युगपद अनिर्णिति समीकरणों के हल की विधियों का विवेचन किया गया है।[2] एक लम्बी अवधि के बाद वक्षाली हस्तलिपि (२०० ई० लगभग) की रचना हुई, जिससे प्राचीन भारत के अंकगणित एवं बीजगणित के विकास पर प्रचुर मात्रा में प्रकाश मिलता है। फिर ४वीं शताब्दी के लगभग सौर, पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ एवं पैतामह—इन पाँच प्रमुख सिद्धान्तों का निर्माण हुआ। ५वीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी का काल भारतीय गणित का स्वर्ण युग है जिस अवधि में आर्यभट (४०६ ई०), ब्रह्मगुप्त, भास्कर प्रथम, लल्ल, श्रीधराचार्य, महावीराचार्य, श्रीपति, भास्कराचार्य (१११४ ई०) जैसे अनेकानेक प्रतिभासम्पन्न गणितज्ञों एवं ज्योतिर्विदों का प्रादुर्भाव हुआ। इन विद्वानों ने ज्योतिष एवं गणित में अनेक ऐसे मौलिक एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों—सूत्रों की स्थापना की जिनका आविष्कार अन्य देशों में सैकड़ों वर्षों बाद हुआ।

५वीं शताब्दी ईसा पूर्व से ५वीं शताब्दी ईस्वी की अवधि में क्या यहाँ गणित में कोई मौलिक कार्य नहीं किया जा सका? क्या किसी गणितीय ग्रन्थ की रचना नहीं की जा सकी? भारतीय गणित का

१ विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य शंकर बालकृष्ण दीक्षित, भारतीय ज्योतिष, लखनऊ, १९६३, पृ० १-९३ एवं बी. बी. दत्ता एण्ड ए. एन. सिंह, हिस्टरी आफ हिन्दू मैथमैटिक्स, भाग १, बम्बई, १९६२, पृ. ९ एवं १८५

२ द्रष्टव्य बी. बी. दत्ता, दि साइन्स आफ दी शुल्व, कलकत्ता, १९३२ एवं सत्यप्रकाश तथा उषा ज्योतिष्मती, दि शुल्व सूत्राज, इलाहाबाद, १९७९

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्ण युग क्या एकबारगी आ गया ? आदि प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठते हैं। ऐसे प्रश्नों के समीचीन उत्तर के लिए हमें इस काल की रचनाओं का अवलोकन करना होगा। इस अवधि में रचित पिंगल के छन्द सूत्र (२०० ई० पू०), बौद्ध साहित्य-ललित विस्तर (प्रथम शताब्दी ई० पू०) आदि रचनाओं में बीजगणितीय सिद्धान्तों का समावेश है तथा बड़ी-बड़ी संख्याओं (यथा लल्लक्षण = १०^{53} की चर्चा है,[1] पर जिन ग्रन्थों में गणितीय सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है वे हैं जैन आगम ग्रन्थ। ये ग्रन्थ भारतीय गणित की शृंखला की टूटी हुई कड़ी को जोड़ने का कार्य करते हैं। अतः इन ग्रन्थों में उपलब्ध गणितीय सिद्धान्तों का अध्ययन एवं संकलन अति आवश्यक है। इस बीच कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। एम० रंगाचार्य, बी० बी० दत्ता, हीरालाल जैन, नेमिचन्द्र शास्त्री, ए० एन० सिंह, टी० ए० सरस्वती, मुकुट बिहारी अग्रवाल, लक्ष्मीचन्द जैन, अनुपम जैन जैसे विद्वानों ने इस दिशा में श्लाघनीय प्रयास किये हैं जिससे बहुत सारे तथ्यों का रहस्योद्घाटन हो सका है।

गणित अनवरत रूप से जैन मुनियों के चिन्तन एवं मनन का विषय रहा है। संख्यान (अंक और ज्योतिष) उनकी ज्ञान-साधना का अभिन्न अंग है। शिक्षा के चौदह आवश्यक अंगों में इसे प्रमुख स्थान दिया गया है तथा बहत्तर विज्ञानों एवं कलाओं में अंकगणित को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है।[2] इतना ही नहीं, सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को चार अनुयोगों (समूहों) में विभाजित किया गया है जिनमें एक करणानुयोग है, जिसे गणितानुयोग भी कहा जाता है। गणितीय साधनों द्वारा सृष्टि-संरचना को स्पष्ट करना तथा कर्म-सिद्धान्त की व्याख्या करना जैनाचार्यों का प्रमुख दृष्टिकोण है। इसलिए मात्र करणानुयोग का ही नहीं अपितु द्रव्यानुयोग के ग्रन्थों का भी अध्ययन गणित के परिपक्व ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ने गणित की महत्ता बतलाते हुए कहा है—

लौकिके वैदिके वापि तथा सामायिकेऽपि यः।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ॥[3]

अर्थात्—सांसारिक, वैदिक तथा धार्मिक आदि सभी कार्यों में गणित उपयोगी है। यही कारण है, कि जैन आगम ग्रन्थों में गणितीय तत्त्व प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। साथ ही जैनाचार्यों एवं विद्वानों ने शिष्यों की सुविधा हेतु अनेक गणितीय एवं ज्योतिष सम्बन्धी स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना भी की जिनमें कुछ तो उपलब्ध हैं और कुछ कालक्रम से नष्ट हो चुके हैं।

सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति एवं जम्बूद्वीप पज्ञप्ति प्राचीन जैन ज्योतिष के प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं, जिनकी रचना का समय लगभग ५०० ई० पू० समझा जाता है। प्राकृत भाषा में रचित इन ग्रन्थों के अतिरिक्त ज्योतिष्करंडक एवं गर्ग-संहिता के नाम भी इस सूची में जोड़े जाते हैं।[4] इन ग्रन्थों में ज्योतिष गणितीय विचारधारा दृष्टिगोचर होती है। सूर्य-प्रज्ञप्ति में तो पाई (π) के दो मान—३ एवं

---

१ बी. बी. दत्ता एण्ड ए. एन. सिंह, संदर्भ-१, पृ० ११ तथा ए. के. बाग, बाईनोमियल थ्योरम इन एंसिएंट इंडिया, इंडियन जनरल आफ हिस्टरी आफ साइन्स, अंक १, १९६६, पृ. ६८-७३

२ दृष्टव्य जे. सी. जैन, लाईफ इन एंसिएंट इंडिया एज डेपिक्टेड इन दी जैन केनन्स, बम्बई, १९४७ पृ. १७८ एवं बी. बी. दत्ता एण्ड ए. एन. सिंह, सन्दर्भ-१, पृ. ६

३ लक्ष्मीचन्द जैन (सं.), गणित-सार-संग्रह, सोलापुर, १९६३, संज्ञाधिकारः श्लोक ९, पृ. २

४ द्रष्टव्य परमेश्वर झा, जैनाचार्यों की गणितीय एवं ज्योतिष सम्बन्धी कृतियाँ एक सर्वेक्षण, तुलसी प्रज्ञा, खण्ड-१२, अंक-३, १९८६, लाडनूं, पृ. ३१

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

√ १० की भी चर्चा है। पुनः जैनधर्म के प्रसिद्ध एवं अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु (३१८ ई० पू०) के दो ज्योतिष ग्रन्थों—सूर्य-प्रज्ञप्ति पर टीका एवं भद्रबाहु-संहिता का उल्लेख मिलता है।[1] ठाणांग, प्रश्न-व्याकरणांग, समवायांग, सूयगडांग आदि द्वादशांग साहित्य (४००–१००० ई० पू०) में नौ ग्रह, नक्षत्र, राशि, दक्षिणायन एवं उत्तरायण, सूर्य-चन्द्र-ग्रहण आदि तथ्यों का विवेचन है।[2] जैन धर्म के महत्वपूर्ण ग्रन्थ स्थानांग सूत्र (३२५ ई० पू०) के निम्नलिखित श्लोक में गणित के दश विषयों की चर्चा है—

'परिकम्म ववहारो रज्जु रासी कला सवण्णेय।
जावन्तावति वग्गो घणो ततः वग्गावग्गो विकप्पो व ॥[3]

अर्थात् परिकर्म (मूलभूत प्रक्रियाएँ), व्यवहार (विभिन्न विषय), रज्जु (विश्व माप की इकाई, ज्यामिति), राशि (समुच्चय, त्रैराशिक), कलासवर्ण (भिन्न सम्बन्धी कलन), यावत तावत (सरल समीकरण), वर्ग (वर्ग समीकरण), घन (घन समीकरण) वर्ग-वर्ग (द्विवर्ग समीकरण) एवं विकल्प (क्रम चय-संचय)—गणित के ये दश विषय हैं जिनका प्रयोग विशेष रूप से कर्म-सिद्धान्त की स्थापना के लिए किया जाता है। इससे इस तथ्य की भी पुष्टि होती है कि तत्कालीन जैनाचार्यों को गणित के इन विषयों का समुचित ज्ञान हो गया था। इन विषयों का विशद विवेचन-विश्लेषण महावीराचार्य (८५० ई०) ने अपने ग्रन्थ गणित-सार-संग्रह में किया है।

उत्तराध्ययन एवं भगवती सूत्र (३०० ई० पू०) में वर्ग, घन, संचय आदि अनेक महत्त्वपूर्ण गणितीय विषयों की चर्चा है। भगवती सूत्र (सूत्र ३१४) में एक संयोग, द्विक् संयोग, (त्रिक् संयोग आदि शब्दों का प्रयोग पाया जाता है जिससे संचय-सिद्धान्त की जानकारी मिलती हैं। साथ ही सूत्र ७२६–२७ में विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों—रेखा, वर्ग, घन, आयत, त्रिभुज, वृत्त एवं गोल की बनावट के लिए कम से कम कितने बिन्दुओं की आवश्यकता होती है—इसकी व्याख्या की गयी है।[4] जैन धार्मिक ग्रन्थ के एक प्रमुख ग्रन्थकार उमास्वाति (अथवा उमा-स्वामी) ने (१५० ई० पू०) में तत्त्वार्थाधिगम-सूत्र-भाष्य नामक एक विशाल ग्रन्थ का प्रणयन किया जिसमें सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को सार रूप में संकलित किया गया है। इसमें स्थानमान-सूची, भिन्नों का अपवर्तन, गुणा-भाग की विधियाँ, वृत्त के क्षेत्र फल, परिधि, जीवा, चाप की ऊँचाई एवं व्यास सम्बन्धी सूत्र आदि अनेक गणितीय सिद्धान्त निहित हैं।[5] वे स्वयं गणितज्ञ थे अथवा नहीं, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता, पर इतनी बात निश्चित है कि उनके समय में कोई गणितीय ग्रन्थ अवश्य उपलब्ध रहा होगा जिससे उन्होंने अपनी रचना में कुछ गणितीय सूत्र उद्धृत किए। इसके अतिरिक्त ने जम्बूद्वीप समास नामक एक ज्योतिष-ग्रन्थ के भी रचयिता माने जाते है।

जैन आगमिक साहित्य अनुयोगद्वार सूत्र (प्रथम शताब्दी ई० पू०) में भी प्रथम वर्ग, द्वितीय वर्ग आदि का प्रयोग पाया जाता है जिससे यह ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी ई० पू० में जैनाचार्यों को घातांकों के नियमों का ज्ञान हो गया था। साथ

१ अगरचन्द नाहटा, आचार्य भद्रबाहु और हरिभद्र की अज्ञात रचनाएँ, जैन विद्या का सांस्कृतिक अवदान, चुरू, १९७६, पृ. १०७-८

२ नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, दिल्ली, १९७०, पृ. ५४-७७

३ स्थानांग सूत्र ७४३

४ विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य उत्तराध्ययन, अहमदाबाद, १९३२ एवं भगवती सूत्र (अभयदेव सूरी की टीका सहित) सूरत, १९१९

५ बी. बी. दत्ता, दि जैन स्कूल आफ मैथमैटिक्स, बुलेटिन, कलकत्ता मैथमैटिकल सोसाईटी, कलकत्ता, खंड २१, अंक २, १९२९, पृ. १२६

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही इस ग्रन्थ में स्थानों के नाम में 'कोटि-कोटि' तक की चर्चा है जिससे यह प्रमाणित होता है कि उस समय तक संख्याओं की दशमलव पद्धति की जानकारी हो गयी थी।[1] जैनाचार्यों की परम्परा में स्थान पाने वाले आचार्य कुन्दकुन्द (५२ ई० पू० से ४४ ई० तक) ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें समय-सार, प्रवचन-सार, नियम-सार, पंचास्तिकाय सार एवं अष्ट पाहुड आदि प्रमुख हैं। पंचास्तिकाय सार में समय एवं निमिष की परिभाषा दी गयी है, एक संख्य, असंख्य, अनन्त आदि का प्रयोग किया गया है। प्रवचन-सार में तो प्रायिकता का मूल सिद्धान्त भी निहित है जिसके आविष्कार एवं विकास का श्रेय गेलिलियो, फरमेटे, पास्कल, बरनौली आदि पाश्चात्य गणितज्ञों को दिया जाता है।[2]

कर्म-सिद्धान्त की दो प्रमुख रचनाओं आ० आर्य मुख एवं आ० नागहस्ति द्वारा रचित कषायप्राभृत (कसाय पाहुड) एवं आ० पुष्पदंत एवं भूतवली द्वारा रचित षट् खंडागम (प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी) में भी गणितीय सामग्री की बहुलता है। षट् खंडागम पर वीरसेनाचार्य (९ वीं शताब्दी) द्वारा लिखी गयी धवला नाम की एक महत्वपूर्ण टीका में प्राकृत में रचित अनेक ग्रन्थों के गणितीय उद्धहरण पाए जाते हैं। आठों परिकर्मों—संकलन व्यकलन, गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन एवं घनमूल, भिन्नों, वितत भिन्नों, घातांक एवं लघुगणक के नियमों, विभिन्न प्रकार के समुच्चयों पर संक्रियाओं आदि गणितीय विषयों का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। दीर्घ संख्याओं को व्यक्त करने की प्रक्रिया में संख्या पर स्वसंख्या का वर्ग आरोपित करने की एक अनोखी रीति का विश्लेषण है जिसे वर्गित संवर्गित की संज्ञा दी गयी है। अनंत शब्द को परिभाषित कर उसके भेदों-प्रभेदों का निर्धारण किया गया है तथा ११ प्रकार के अनन्तों का उल्लेख किया गया है। विभिन्न प्रकार के परिमित, अपरिमित एवं एकल समुच्चयों के उदाहरण भी उपलब्ध हैं। साथ ही पाई (π) का मान ३५५/११३ स्वीकार किया गया है जिसे चीनी मान कहा जाता है, पर ऐसा अनुमान है कि चीन में प्रयोग होने से पूर्व ही जैनाचार्यों ने इसका प्रयोग किया है।[3]

आध्यात्मिक संत एवं जैन दार्शनिक विद्वान यतिवृषभ ने प्राकृत भाष में लोकानुयोग का सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण उपलब्ध ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोक-प्रज्ञप्ति) की रचना की। साथ ही उन्होंने कसायपाहुड पर चूर्णि सूत्रों की टीका भी लिखी। कुछ विद्वानों के मतानुसार वे आर्यभट (४०९ ई०) के समकालीन अथवा समीपवर्ती थे, पर नेमिचन्द शास्त्री ने पर्याप्त प्रमाणों के आधार पर उनका समय १७६ ई० के आस-पास निर्धारित किया है। जो भी हो, इतना निश्चित है, कि जैन साहित्य के अन्तर्गत तिलोयपण्णत्ती का विशिष्ट स्थान है। नौ महाधिकारों में विभक्त यह एक विशाल ग्रन्थ है जिसमें अनेक प्राचीन ग्रन्थों के उल्लेख एवं उद्धरण प्राप्त होते हैं। इसमें विश्व रचना के कर्म-सिद्धान्त एवं अध्यात्म-सिद्धान्त का विशेष विवेचन तो है ही, साथ ही अनेक गणितीय सिद्धान्तों का भी विश्लेषण है। काल-माप एवं लोक माप बताने हेतु विशाल संख्याओं एवं इकाइयों को परिभाषित किया गया है जहाँ काल की सूक्ष्मतम इकाई समय है तथा सबसे बड़ी संख्यात इकाई अचलात्म है

---

१ एच. आर. कपाडिया (सं.). गणित तिलक, बरोदा, १९३७, इन्ट्रो., पृ. २२

२ अनुपम जैन, आ. कुन्दकुन्द के साहित्य में विद्यमान गणितीय तत्व, अर्हत् वचन इन्दौर, अंक १,१९८८, पृ. ४७-५२

३ लक्ष्मीचन्द जैन, बेसिक मैथमैटिक्स, भाग-१, जयपुर, १९८२, पृ. २८-३४ तथा ए. एन. सिंह, हिस्टरी आफ मैथमैटिक्स इन इण्डिया फ्रोम जैन सोर्सेज, जैन एंटिक्वरि, आरा, खंड १५, १९४९, पृ. ४६-५३ एवं अनुपम जैन, दार्शनिक गणितज्ञ आ० वीरसेन, अर्हत् वचन, अंक २, इन्दौर, १९८८, पृ. २५-३७

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसका मान $(८४)^{31} \times (१०)^{90}$ वर्ष है। संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त के विभिन्न प्रकारों एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों को स्थापित किया गया है। अनेक प्रकार की आकृतियों के क्षेत्रफल, वृत्ताकार आकृति की परिधि, वृत्त खण्ड का क्षेत्रफल, वाण, जीवा एवं चापकर्ण के मान तथा विविध आकारों के सांद्रों के घनफल निकालने की छेद विधि का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है। समान्तर एवं गुणोत्तर श्रेणियों से सम्बन्धित सूत्रों के साथ-साथ तत्सम्बन्धी उदाहरण भी दिए गए हैं। साथ ही पाई (π) का जैन परम्परानुसार स्थूल मान ३ और सूक्ष्म मान $\sqrt{१०}$ स्वीकार किया गया है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विविध गणितीय प्रक्रियाओं को संकेतों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।[1]

इन आगम ग्रंथों में गणितीय सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ प्राचीन ग्रंथों की ऐसी गाथाओं को भी उद्धृत किया गया है जो गणित की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित हैं। धवला टीका में तो कुछ ऐसे ग्रन्थों का नामोल्लेख भी है—अग्गयणिय, दिट्ठिवाद, परिकम्म, लोयविणिच्छय, लोकविभाग, लोगाइणि आदि।[2] धवला में ही 'परियम्म-सुत'—प्राकृत गद्यमय ग्रन्थ की चर्चा है जिससे कई गाथाएँ उद्धृत की गई हैं। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ गणित एवं करणानुयोग से सम्बन्धित है।[3] आचार्य यतिवृषभ ने एक करण-सूत्र नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इसी तरह 'करण भावना' नामक एक और जैन ग्रंथ की चर्चा है। वीरसेनाचार्य (९वीं शती) की सिद्धभूपद्धति पर लिखी टीका से ज्ञात होता है कि उनके समय तक क्षेत्रगणितविषयक कोई जटिल ग्रन्थ विद्यमान था।[4] आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती (१०वीं शती) कृत त्रिलोकसार में भी 'वृहत्तधारा' नामक धाराओं से सम्बन्धित एक प्राचीन जैन ग्रन्थ की चर्चा है जो उस समय तक उपलब्ध था, पर अब अनुपलब्ध है।[5] इतना ही नहीं, भास्कर प्रथम (७वीं शताब्दी) कृत आर्यभटीय-भाष्य में भी पाँच प्राकृत गाथाएँ मिलती हैं जो अंकगणित सम्बन्धी किसी प्राचीन प्राकृत ग्रंथ से उद्धृत हैं। सम्भवतः वह किसी जैनाचार्य की ही कृति होंगी।[6] भास्कर प्रथम की रचना से यह भी ज्ञात होता है कि मस्करि, पूरण, मुद्गल, पूतन आदि गणितज्ञों ने आठ व्यवहारों में से प्रत्येक पर स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की थी।[7] सम्भावना है, कि इनमें से कुछ प्राचीन जैनाचार्य ही हों। इस तरह गणित सम्बन्धी अनेक प्राचीन जैन ग्रन्थों के सम्बन्ध में यत्र-तत्र सूचना मिलती है, पर दुःख है कि वे सभी अभी उपलब्ध नहीं हैं।

उपरोक्त सूचनाओं से स्पष्ट है कि ५वीं शताब्दी ई. पू. से ५वीं शताब्दी इस्वी तक की अवधि में रचित प्रमुख जैन आगम ग्रन्थों में गणित की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं अनेकों सूत्रों का उपयोग किया गया है। इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि इन गणितीय सिद्धान्तों का ज्ञान यहाँ के लोगों को बहुत पूर्व में ही हो गया था। साथ ही इन ग्रन्थों से इसका भी आभास मिलता है कि आलोच्य अवधि में गणित के स्वतन्त्र ग्रन्थ भी भारत में लिखे जा चुके थे जो प्रायः वर्तमान समय में अनुपलब्ध हैं। इस तरह भारतीय गणित के अंध गयु में

१ लक्ष्मीचन्द जैन, वही, पृ. २१-२७ एवं अनुपम जैन, दार्शनिक गणितज्ञ आ० यतिवृषभ, वही, पृ० १७-२४
२ लक्ष्मीचन्द जैन, संदर्भ-५, पृ. ९
३ अनुपम जैन एवं सुरेशचन्द्र अग्रवाल, जैन गणितीय साहित्य, अर्हत् वचन, इन्दौर, अंक १, १९८८, पृ. ३१
४ वही, पृ. २४-२५ ५ वही, पृ. २४
६ वही, पृ. २८-२९ एवं कृ. शं. शुक्ला (सं.) आर्यभटीय-भाष्य, दिल्ली, १९७६, पृ. ५६ (इंट्रोडक्शन)
७ कृ. शं. शुक्ला, वही, पृ. ७ एवं ६७ एवं टी० ए० सरस्वती, ज्योमेट्री इन एंसिएंट एण्ड मेडियेवल इण्डिया, दिल्ली, १९७९, पृ० ६९

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी यहाँ गणित का विकास होता रहा जिसमें जैनाचार्यों का अमूल्य योगदान रहा। आवश्यकता इस बात की है कि शोधकर्त्ताओं एवं अध्येताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो, विभिन्न ग्रंथागारों में उपलब्ध पांडुलिपियों का अन्वेषण हो एवं बचे हुए ग्रंथों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन-मनन हो। तभी हम जैनाचार्यों की गणितीय उपलब्धियों का सही-सही मूल्यांकन कर सकेंगे तथा विश्व के समक्ष गणित के विकास में भारतीय अवदान का सही चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम हो सकेंगे।

□□

(शेष पृष्ठ ३६८ का)

उपसंहार तथा कर्तव्य-निर्देश

वस्तुतः ऐसे स्तोत्रों की परम्परा अतिविस्तृत है। जिस प्रकार संस्कृत अलङ्कार शास्त्रों में चित्रालङ्कारों की क्रमशः उपेक्षा की गई उसी प्रकार जैनाचार्यों द्वारा निर्मित 'चित्रकाव्यात्मक स्तोत्रों' की भी पर्याप्त उपेक्षा हुई है। एक काल ऐसा अवश्य रहा होगा, जिस समय प्रत्येक स्तोत्रकार, भक्ति, दर्शन और विनय के साथ ही स्तोत्रों में शब्द-विन्यास की इस महनीय शैली का अनुसरण किए बिना अपनी कृति को पूर्ण नहीं मानने का आदी हो गया होगा! अब न तो वैसे विद्वान साधु-गण ही दिखाई देते हैं और न वैसे रचनाकार। सारल्य के मोह में पड़कर वैसी प्रौढ़ रचना करना हेय माना जा रहा है, यह दुर्भाग्य की बात है।

जैन-भाण्डागारों में ऐसे अनेक ग्रन्थ और प्रकीर्ण पत्र पड़े हुए हैं, जिनमें ऐसी विशिष्ट स्तुतियाँ लिखी हुई सुरक्षित हैं। कवित्व का प्रथम उन्मीलन स्तुति से ही होता है। सांसारिक प्राणी तो स्तोत्र के अतिरिक्त रचना करके भी अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं किन्तु साधुजीवन को स्वीकार किए हुए मुनिगणों की तो एकमात्र वृत्ति होती है 'प्रभु कृपा-प्राप्ति'। अतः वे यदि कवि होते हैं तो अपनी वाणी को स्तुति-रचना द्वारा ही सार्थक करते हैं। रमणीयता के रूप को साकार बनाने के लिए नए-नए आयामों को अपनाते हैं तथा प्रौढ़-पाण्डित्य के निकषभूत चित्रालङ्कार-पूर्ण स्तुतियों की अभिनव सृष्टि करते हैं।

अतः विद्वज्जनों से हमारा यही निवेदन है कि—

सर्वाङ्गे मृदुलाऽपि यात्र यमक श्लेषादिभिः सन्धिषु,
प्रौढत्वेन दधाति यत् समुचितं काठिन्यमापाततः।
तद्दोषाय न मन्यतां बुधजनां! आस्ते तदावश्यकं,
लावण्येन सहैव सङ्घटनमप्यङ्गेषु काव्यश्रियः॥

गैर्वाण्याश्चिररक्षणाय मनसा बद्धादरा धीधना—
स्तक्त्वा मोहमवाप्तपुस्तकधनं संरक्ष्यतां यत्नतः।
तस्मिन् माऽस्तु मतिः कदासि विरसा क्लिष्टत्वदृष्ट्या वृथा,
क्लिष्ट-ग्रावहृदो न किं सृतिमिता गङ्गा जगत्पावनी॥

□□

ब्रजमोहन बिड़ला शोध केन्द्र,
उज्जैन (म. प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org